साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 7, अंक : 37 (प्रति बुधवार), इन्दौर 4 मई 2022 से 10 मई 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

जलती धरती तपता आसमान ग्लोबल वार्मिंग के दुष्परिणाम

भारत जैसे विकासशील देश में ही जहां गरीबी ने अपना परचम फैला रखा है। शहरों में पेट्रोल ,डीजल, केरोसिन से चलने वाली गाड़ियों और वातानुकूलित यंत्रों याने ए,सी की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होने से वातावरण में उष्णता बढ़ते जा रही हैद्य इसके अलावा वनों का विनाश एक भयानक समस्या के रूप में देश में फैलता जा रहा हैद्य अंधाधुंध फैक्ट्रियों एवं मशीनों के उपकरणों से निकलने वाले धुंए से वातावरण विषैला बनाकर मनुष्य और जीव जंतुओं का जीना दूभर कर दिया है। वनों की कटाई के साथ-साथ कंक्रीट के जंगल धीरे-धीरे गांव की तरफ बढ़ने लगे हैं, ऐसे में शुद्ध वायु और और तापमान में आश्चर्यजनक बदलाव जिसके परिणाम स्वरूप वर्षा ऋतु के परिवर्तन एवं बारिश में न्यूनता आने से धरती के तापमान में बेतहाशा वृद्धि हुई है। इसी के चलते देश के कई शहरों में तापमान 48 से 50 सेल्सियस होने के कारण पशु पक्षी एवं मनुष्य की हीट स्ट्रोक से मृत्यु हुई हो जाती है। पानी की कमी तथा शरीर में डिहाइड्रेशन से लोगों की तथा वन्य पशुओं की लगातार मृत्यु हो रही है।

ग्लोबल वार्मिंग का खतरा वैज्ञानिकों के अनुसार पूरे विश्व में बहुत बढ़ गया है और ऐतिहासिक तौर पर पिछले दो से तीन सौ वर्षों की तुलना की जाए तो बीते कुछ वर्षों में धरती का तापमान आश्चर्यजनक रूप से तीव्र गति से बढ़ गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के पास ग्लोबल वार्मिंग से बचने के लिए कुल मिलाकर 10 से 15 वर्ष ही शेष है। वैज्ञानिकों की यह बातें और रहस्योद्घाटन मानवता को डराने वाला जरूर है पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसके उपायों की जो घोर अनदेखी की जा रही है वह अत्यंत चिंतनीय है। मानवता के लिए अत्यंत खतरनाक भी है। ग्लोबल वार्मिंग न सिर्फ मनुष्य के लिए खतरा है बल्कि जीव-जंतुओं समुद्र मैं पाए जाने वाले जीवो के लिए भी यह अत्यंत विषैला तथा खतरनाक हो सकता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिकों के शोध के अनुसार जीवाश्म ईंधन के दशक ने एवं जलने से ग्लोबल वार्मिंग का तापमान तेजी से बढ़ा है एवं पूरी पृथ्वी जीवाश्म ईंधन के जलने से तेजी से धड़क रही है। वैज्ञानिकों की चेतावनी तथा दिए गए प्रमाण के बाद भी अनेक देश जो कार्बन उत्सर्जन के बड़े जिम्मेदार हैं, जीवाश्म ईंधन की इस्तेमाल को कम करने या खत्म करने का नाम ही नहीं ले रहे हैं। जीवाश्म ईंधन की खपत खत्म होने की बात तो दूर है कम करने का नाम ही नहीं ले रहे हैं, और तो और इसके आसार भी निकट भविष्य में दिखाई नहीं दे रहे हैं। भारत को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों जिसमें अमेरिका ब्रिटेन के अलावा 32 देशों ने जो कार्बन उत्सर्जन एवं जीवाश्म ईंधन के उपयोग के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार हैं, सम्मेलन कर इस पर चिंता जरूर जताई है पर इसमें स्पष्ट तौर पर अमेरिका, ब्रिटेन ,जापान चीन ,रूस की दादागिरी दिखाई देती है,यह छोटे गरीब देशों पर सारी जिम्मेदारी लादने का काम कर रहे हैं ।विश्व के कुल देशों में से लगभग 50 देश ऐसे हैं जो जीवाश्म ईंधन का उपयोग कर पृथ्वी को धधकाने के कार्य का 60त्न तक हिस्सेदारी रखते हैं। लेकिन इन देशों को ग्लोबल वार्मिंग की चिंता की बजाए विकासशील देश एवं गरीब देशों पर पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर ग्लोबल वार्मिंग के नाम पर दोषारोपण कर के अपनी इतिश्री कर लेते हैं। ग्लोबल वार्मिंग तथा पर्यावरण चिंतन जितने भी सम्मेलन हुए हैं इसमें बड़े देशों की नीति एवं दादागिरी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। चीन जो सबसे बड़ा कार्बन का उत्सर्जक देश है उसने पर्यावरण पर हुए सम्मेलनों में हिस्सेदारी तो दूर उसकी तरफ ध्यान देना भी उचित नहीं समझा। इंटरनेशनल पॉल्यूशन कंट्रोल कमिटी ने चेतावनी दी है कि धरती के तापमान की वृद्धि को डेढ़ डिग्री तक रोकने के लिए कार्बन उत्सर्जन में 43त्न से 50त्न तक कटौती करनी होगी। 2010 से लेकर 2021 तक दुनिया का औसत वार्षिक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन मानव इतिहास में सबसे उच्चतम स्तर पर पहुंच गया है जो सर्वाधिक खतरे के निशान से भी ऊपर है। फलस्वरूप जलवायु परिवर्तन के वजह से होने वाली ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए हमें अपने उत्सर्जन को लगभग शून्य पर लाना होगा, और इस कार्य के लिए पूरी दुनिया को ऊर्जा क्षेत्र में बड़े और कार्यकारी बदलाव लाने होंगे, इसके अलावा जीवाश्म ईंधन के उपभोग में भारी कमी भी लानी पड़ेगी। विगत 3 वर्षों में अक्षय ऊर्जा स्रोतों में जैसे सौर एवं पवन ऊर्जा साथी स्टोरेज बैटरी की लागत में आश्चर्यजनक गिरावट आई है जो लगभग गैस तथा कोयले की कीमत के बराबर हो गए हैं। कार्बन उत्सर्जन अभी 54त्न अधिक है। वास्तविक रूप से देखा जाए तो दुनिया के सब अमीर देश अकेले विश्व के कुल गैस उत्सर्जन के लिए बड़े जिम्मेदार पाए गए हैं। वैज्ञानिकों ने कहा है कि अगले आठ दस सालों में अपने गैस उत्सर्जन में कटौती को आधा यानी 50% से कम नहीं करती है तो वर्ष 2050 तक उसे शून्य स्तर पर लाना होगा, अगर ऐसा नहीं किया तो पृथ्वी को तबाह होने से कोई नहीं रोक सकता है। भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो भारत मोटे तौर पर ग्रीन हाउस गैसों के कुल वैश्विक उत्सर्जन में सहित 6.8 प्रतिशत का हिस्सेदार है। 1990 से लेकर 1920 तक भारत के ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में एक में 175% की बढ़ोतरी हुई है। 2013 से 2021 के बीच देश के प्रति व्यक्ति उत्सर्जन की मात्रा 17 फ़ीसदी बढ़ी है, राहत की बात यह है कि अब भी भारत का उत्सर्जन स्तर जी-20 देशों के औसत स्तर से बहुत नीचे है। देश में अक्षय ऊर्जा की हिस्सेदारी 11% की है, भारत की कुल ऊर्जा आपूर्ति में जीवाश्म ईंधन आधारित प्लांट का योगदान 74% है। यदि कार्बन उत्सर्जन को रोका नहीं गया और जीवाश्म ईंधन के उपयोग की रफ्तार यही रही तो भारत सहित विश्व के अधिकांश देश अपनी धरती को बचाने में सक्षम नहीं होंगे।

साभार - डाउन टू अर्थ

क्या जूनोटिक रोगों का हॉटस्पॉट बन सकता है भारत?

मुंबई। जहां एक ओर दुनिया कोरोना महामारी से जूझ रही है, वहीं स्टेट ऑफ द वर्ल्ड फॉरेस्ट रिपोर्ट 2022 के मुताबिक भारत और चीन के नए जूनोटिक संक्रामक रोगों के सबसे बड़े हॉटस्पॉट के रूप में उभरने की बात सामने आ रही है। जूनोटिक का मतलब वन्यजीवों से अन्य स्तनधारियों में फैलने वाले रोगों से है। अगले कुछ दशकों में लोगों पर बहुत अधिक दबाव बढ़ने के आसार हैं, जंगलों पर बढ़ते दबावों को देखते हुए इसकी आशंका बहुत अधिक है। रिपोर्ट में कहा गया है कि लोगों और वन्यजीवों की बीच सम्पर्क बढ़ रहे हैं।

एक अन्य शोध पत्र में इसी तरह का अनुमान लगाया गया है। जिसमें यह भी कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के चलते अगले 50 वर्षों में अन्य स्तनधारियों में वायरस फैलाने वाले स्तनधारियों के 15,000 से अधिक नए मामले सामने आ सकते हैं। अध्ययन में कहा गया है कि कम से कम 10,000 वायरस प्रजातियों के मनुष्यों को संक्रमित करने की क्षमता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से प्रजातियों से संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। ये वायरस जंगल में रहने वाले स्तनधारियों में चुपचाप फैल रहे हैं। हालांकि अध्ययन के अंतिम प्रकाशन के निष्कर्ष अभी आने बाकी हैं। अध्ययन में चेतावनी दी गई है कि जलवायु और भूमि उपयोग में बदलाव की वजह से वन्यजीवों की भौगोलिक दृष्टि से अलग-अलग प्रजातियों के बीच संक्रमण के एक दूसरे में फैलने के नए अवसर पैदा होंगे, जिसके परिणामस्वरूप जूनोटिक स्पिलओवर, जानवरों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारियों में लगातार बढ़ोतरी होंगी। यदि इन रोगों के संक्रमण के फैलने से बचना है तो भूमि उपयोग को सही से लागू करना होगा। न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कृषि में विस्तार किया जा सकता है जिससे वनों की कम से कम कटाई हो।

जलवायु परिवर्तन- 57 फीसदी तक बढ़ जाएगा मकई की फसल के विफल होने का खतरा

नई दिल्ली। कहावत है कि मुसीबतें कभी अकेले नहीं आतीं, वो अपने साथ अन्य समस्याओं को भी साथ लाती हैं। ऐसा ही कुछ नासा के एक नए अध्ययन में भी सामने आया है, जिसके अनुसार समय के साथ बढ़ते तापमान के चलते बाढ़, सूखा, लू जैसी चरम मौसमी घटनाएं कहीं ज्यादा विकराल रूप ले लेंगी और कृषि तथा स्वास्थ्य पर व्यापक असर डालेंगी।

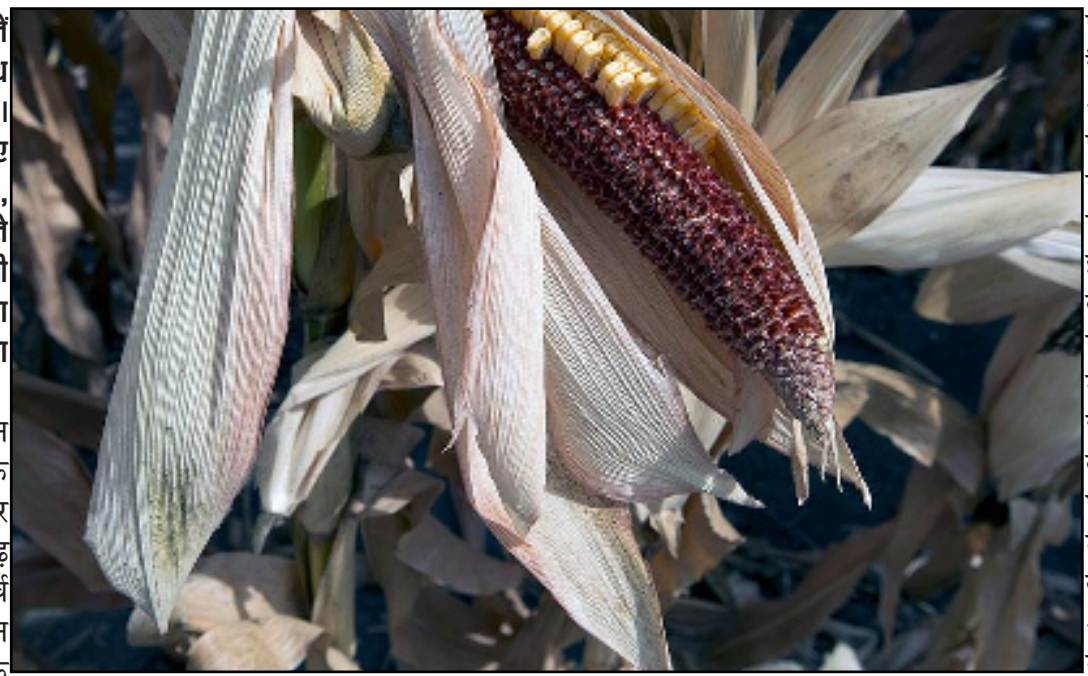

अनुमान है कि मौसम की इन चरम घटनाओं के साथ फसलों के विफल होने, जंगल की आग और अन्य विपत्तियों का खतरा भी बढ़ जाएगा। जर्नल एनवायर्नमेंटल रिसर्च लेटर्स में प्रकाशित इस नए अध्ययन से पता चला है कि सदी के अंत तक लू, सूखा और भारी बारिश जैसी घटनाओं के संयुक्त प्रभाव से दुनिया के छह प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्रों में से तीन में मकई की फसल पर जलवायु संबंधी विफलताओं का जोखिम किसी एक वर्ष में दोगुना हो जाएगा। जो एक साथ इन तीनों क्षेत्रों में फसल पैदावार में भारी गिरावट की वजह बन सकता है। गौरतलब है कि इससे पहले भी कई अध्ययनों में जलवायु में आते बदलावों का मॉडल तैयार किया है। जैसी की एक निश्चित क्षेत्र में तापमान में 38 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के दिनों की संख्या में कितनी वृद्धि होगी। लेकिन शोधकर्ताओं के मुताबिक इन घटनाओं का सबसे ज्यादा असर तब पड़ता है जब यह चरम घटनाएं एक साथ या निकट क्रम में घटती हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में जहां अत्यधिक गर्मी के साथ सूखा पड़ता है जिसकी वजह से जंगल की आग विकराल रूप ले लेती है। इसके बाद हुई भारी बारिश भूस्खलन जैसे खतरों को पैदा कर देती है। इन खतरों के सम्मिलित प्रभाव को समझने के लिए शोधकर्ताओं ने मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट के ग्रैंड एन्सेम्बल नामक एक प्रसिद्ध जर्मन जलवायु मॉडल का उपयोग किया है। इसमें उन्होंने 1991 से 2100 के बीच 100 से भी ज्यादा सिमुलेशन का उपयोग किया है। यह समझने के लिए कि क्या भविष्य के लिए किया गया पूर्वानुमान सटीक होगा। शोधकर्ताओं ने पहले 1991 से 2020 के बीच घटी भारी बारिश और सूखे जैसी घटनाओं का सिमुलेशन किया है। निष्कर्षों के मेल खाने के बाद उन्होंने सदी के अंत तक घटने वाली इन चरम घटनाओं का विश्लेषण किया है, इसमें विशेष रूप से उन खतरों पर ध्यान केंद्रित किया गया है जो भविष्य में एक साथ घट सकते हैं।

इस विश्लेषण की मदद से कॉलिन रेमंड और उनके सहयोगियों ने यह समझने का प्रयास किया है कि कैसे तापमान और बारिश यह दोनों मिलकर मकई की पैदावार को कैसे प्रभावित कर सकते हैं। मक्का एक ऐसी खाद्य फसल है जो पूरी दुनिया में उगाई जाती है। जिन छह प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में प्रभावों का अध्ययन किया गया है वो लगभग इसकी कुल वैश्विक पैदावार का दो-तिहाई हिस्सा पैदा करते हैं। गौरतलब है कि अमेरिका दुनिया का प्रमुख मक्का उत्पादक देश है, जिसने 2021 में लगभग 41.9 करोड़ टन मक्के की पैदावार की थी। यदि भारत की बात करें तो मक्का उत्पादन में उसका सातवां नंबर आता है जो विश्व का करीब 2 फीसदी मक्का पैदा कर रहा है। अनुमान है कि 2018-19 में देश में इसकी कुल पैदावार करीब 2.78 करोड़ मीट्रिक टन थी। शोधकर्ताओं को इस मॉडल सिमुलेशन से पता चला है कि सदी के अंत तक दुनिया भर में आमतौर पर तीन से चार दिनों तक चलने वाली गर्मी की इन लहरों के घटने की सम्भावना 100 से 300 फीसदी तक बढ़ जाएंगी। इसी तरह सभी क्षेत्रों में भारी बारिश की घटनाओं में भी वृद्धि हो जाएगी, कुछ क्षेत्रों में तो तीन से चार दिनों तक चलने वाली यह घटनाएं दोगुनी तक हो सकती है। इसके साथ ही शोधकर्ताओं ने यह भी विश्लेषण किया है कि यह बढ़ी हुई घटनाएं, समय और स्थान पर कैसी एक साथ आघात करेंगी और यह मिलकर मक्के की फसल को कैसे प्रभावित कर सकती हैं। शोधकर्ताओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के मुताबिक किसी एक ही वर्ष में कम से कम दुनिया के तीन प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्रों में इन चरम मौसमी घटनाओं के चलते मक्के की फसल के विफल होने की सम्भावना सदी के अंत तक दोगुनी हो जाएगी। जोकि वर्तमान में 28.7 फीसदी से बढ़कर भविष्य में 57.3 फीसदी तक जा सकती है। वहीं यदि पांच प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों की बात करें तो इनमें किसी वर्ष में फसल के एक साथ विफल होने की सम्भावना 0.6 फीसदी से बढ़कर 5.4 फीसदी तक हो सकती है। अनुमान है कि इसका सबसे ज्यादा खामियाजा अमेरिका के मिडवेस्ट इलाके में फसलों को भुगतना पड़ सकता है। जबकि उसके बाद यूरोप के सबसे ज्यादा प्रभावित होने की सम्भावना है। इस अध्ययन में इस बात की भी जांच की गई है कि आने वाले समय में जंगल में बढ़ती आग की घटनाएं, मानव स्वास्थ्य के लिए कितनी घातक हो सकती हैं। प्रमुख शोधकर्ता रेमंड कॉलिंस का कहना है कि यह सब घटनाएं आपस में जुड़ी हुई हैं। यह मामला सिर्फ लू या गर्मी और सूखे का ही नहीं है। जब हम इन बड़ी आपदाओं से निपटने की कोशिश कर रहे होते हैं तो यह मुद्दा इन चरम घटनाओं के आपसी अंतर्संबंधों का है, जिनका प्रभाव सबसे ज्यादा गंभीर होता है। इससे पहले भी जर्नल नेचर फूड में प्रकाशित एक अन्य अध्ययन में सामने आया था कि जलवायु में आते बदलावों के चलते 2030 तक मक्के और गेहूं की पैदावार प्रभावित हो सकती है। अनुमान है कि जहां अगले 8 वर्षों में मक्के की पैदावार 24 फीसदी तक गिर सकती है वहीं जलवायु में आते बदलावों का फायदा गेहूं को होगा जिसकी पैदावार 17 फीसदी तक बढ़ सकती है। शोध से इतना तो स्पष्ट है कि उत्तरी गोलार्ध में गेहूं की पैदावार में होने वाली वृद्धि दक्षिण में मक्के की उपज में आने वाली गिरावट की भरपाई नहीं कर पाएगी। इसका असर न केवल खाद्य सुरक्षा पर पड़ेगा। साथ ही पहले से ही गरीबी के मार झेल रहे छोटे किसानों को इसका खामियाजा भुगतना होगा। नतीजन आय में असमानता व्याप्त है वो पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा बढ़ जाएगी। देखा जाए तो जलवायु में आते इन बदलावों के लिए हम इंसान ही जिम्मेवार हो जो आज बड़ी तेजी से उत्सर्जन कर रहे हैं।

साभार - डाउन टू अर्थ

बदलती जलवायु के कारण भारी दबाव में हैं हिमालयी जल संसाधन- अध्ययन

मुंबई। ऊपरी सिंधु बेसिन (यूआईबी) हिमालय में एक पहाड़ी क्षेत्र है जहां से नदियां निकलती हैं। जो दुनिया के सबसे बड़े हिस्से को कृषि में सिंचाई के लिए तथा पीने के पानी की आपूर्ति करती हैं। भारत, पाकिस्तान, चीन और अफगानिस्तान में करोड़ों लोग इन जल संसाधनों पर निर्भर हैं, इसलिए इनका जलवायु परिवर्तन के अनुरूप ढलना आवश्यक है।

ऊपरी सिंधु बेसिन के जल संसाधन अत्यधिक मौसमी होते हैं क्योंकि वे वसंत और गर्मियों के दौरान बर्फ और ग्लेशियरों के पिघलने के साथ-साथ गर्मियों में होने वाली मॉनसूनी बारिश पर बहुत अधिक निर्भर होते हैं।

एक नए अध्ययन के मुताबिक ऊपरी सिंधु बेसिन (यूआईबी) में जलवायु परिवर्तन और जल संसाधनों पर दबाव वाले 100 शोध प्रश्नों की पहचान की है। इन प्रश्नों का उत्तर वहां रहने वाले लोगों की रक्षा के लिए अहम हैं। यह अध्ययन ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वेक्षण (बीएएस) के वैज्ञानिकों के 100 शोध पत्रों के आधार पर किया गया है। बीएएस के वैज्ञानिकों के पास ग्लेशियोलॉजी और एयरबोर्न रडार तकनीकों में अद्भुत विशेषज्ञता है जो दुनिया भर में अंटार्कटिका और पर्वतीय क्षेत्रों में शोध के लिए उपयोग की जाती है, यह हिमालय पर चल रहे बीएएस शोध का केंद्र बिंदु भी है। अब एक नए अध्ययन ने यूआईबी में चल रहे और भविष्य के जलवायु परिवर्तन के सफल अनुकूलन के लिए आवश्यक 100 आवश्यक प्रश्नों की पहचान करने के लिए ÷क्षितिज स्कैनिंग÷ तकनीक को लगाया है। अध्ययन का उद्देश्य जलवायु योजनाओं, जल प्रबंधन और विकास को आगे बढ़ाने में मदद करने के लिए सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञान में जानकरी और अवसरों की पहचान करना है। जिन प्रश्नों की पहचान की गई वे वर्तमान सोच की सीमाओं को आगे बढ़ते हैं और शासन और नीति, सामाजिक आर्थिक प्रक्रियाओं और पृथ्वी प्रणाली प्रक्रियाओं से संबंधित व्यापक विषयों को समाहित करते हैं। अध्ययन द्वारा उठाए गए प्रश्नों में निम्नलिखित शामिल हैं अंतर्राष्ट्रीय तनाव और संघर्ष ऊपरी सिंधु बेसिन (यूआईबी) में जलवायु परिवर्तन अनुकूलन रणनीतियों को कैसे प्रभावित करते हैं? यूआईबी के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक कल्याण और संसाधन की मांग जल-जलवायु परिवर्तन से कैसे प्रभावित होगी?

साभार - डाउन टू अर्थ

ताजे पानी में पाई जाती है अनोखी जैव विविधत

बहुत से शोधों ने उष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों के बीच जैव विविधता में काफी अंतरों को उजागर किया है। लेकिन एक ऐसा भाग भी है जिसका काफी हद तक अध्ययन नहीं किया गया है। पृथ्वी के तीन प्रमुख आवास के प्रकारों में भूमि, महासागर और मीठे पानी के बीच प्रजातियों की प्रचुरता में अंतर है।

अब एरिजोना विश्वविद्यालय में पारिस्थितिकीविदों की अगुवाई में एक नया अध्ययन किया गया है। जिसमें वैश्विक स्तर पर स्थलीय, महासागरों और ताजे या मीठे पानी में रहने वाले विविध जीवों और पौधों की प्रजातियों की प्रचुरता की उत्पत्ति का खुलासा किया गया है। यह अध्ययन इन प्रजातियों की अधिकता वाले पैटर्न के संभावित कारणों का भी पता लगाता है। पृथ्वी की सतह के 70 फीसदी हिस्से को कवर करने वाले महासागरों के बावजूद, लगभग 80 फीसदी पौधों और जानवरों की प्रजातियां भूमि पर पाई जाती हैं। जो पृथ्वी की सतह का केवल 28 फीसदी हिस्सा है। अध्ययन से पता चला है कि मीठे या ताजे पानी के आवास पृथ्वी की सतह के एक मिनट के हिस्से को कवर करते हैं, जो कि लगभग 2 फीसदी है लेकिन हर क्षेत्र के अधिकतम पशु प्रजातियों की प्रचुरता को दिखता है।99 फीसदी से अधिक ज्ञात पशु प्रजातियों को विश्लेषण में शामिल किया गया था, जैसा कि पौधों की सभी प्रजातियां ज्ञात थीं। अध्ययनकर्ताओं का अनुमान है कि ज्ञात जीवित जानवरों की प्रजातियों में से 77 फीसदी भूमि में निवास करते हैं, 12 फीसदी समुद्री आवास और 11 फीसदी मीठे या ताजे पानी के आवासों में रहते हैं। पौधों में केवल 2 फीसदी प्रजातियां समुद्र को अपना घर मानती हैं और केवल 5 फीसदी मीठे पानी में रहती हैं। अध्ययनकर्ता इस बात में भी रुचि रखते थे कि वैज्ञानिक क्या कहते हैं फिलोजेनेटिक विविधता, जो इस बात की जानकारी प्रदान करती है कि जीवन के वृक्ष पर एक-दूसरे से कितने निकट या दूर से संबंधित जीव हैं। जब टीम ने प्रत्येक आवास के प्रकार के प्रति इकाई क्षेत्र में फिलोजेनेटिक विविधता को देखा, तो उन्होंने पाया कि मीठे पानी की विविधता जानवरों और पौधों दोनों के लिए भूमि और महासागर में पाई जाने वाली विविधता से कम से कम दोगुनी है।पलासियोस ने कहा कि मीठे पानी के आवासों में प्रति इकाई क्षेत्र में अत्यधिक फाइटोलैनेटिक विविधता ताजे पानी के पारिस्थितिक तंत्र के संरक्षण के महत्व पर प्रकाश डालती है। उन्होंने कहा ताजे पानी की सामुदायिक संरचना के बड़े पैमाने पर पैटर्न मोज़ेक कला बनाने की प्रक्रिया से मिलते-जुलते हैं। जहां मीठे पानी में कई समूह भूमि या समुद्री पारिस्थितिक तंत्र से प्राप्त %टुकड़ों% की तरह होते हैं। इसलिए ताजे पानी के आवासों की अतिरिक्त सुरक्षा करने से जानवरों और पौधों के बहुत ही अलग समूहों को कुशलतापूर्वक संरक्षित करने में मदद मिल सकती है। इसके विपरीत स्थलीय आवासों में जानवरों और पौधों की प्रजातियां केवल कुछ जाति या जीवों के वर्गीकरण समूहों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन जाती के कुछ उदाहरणों में स्पंज, नेमाटोड, मोलस्क और कॉर्डेट्स शामिल हैं, वह समूह जिसमें कशेरुक होते हैं। इस खोज ने अध्ययनकर्ताओं को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया कि ताजे पानी के आवासों को संरक्षित करने से भूमि या समुद्र में समान मात्रा में क्षेत्र को संरक्षित करने की तुलना में अधिक प्रजातियों और अधिक विकासवादी इतिहास की रक्षा की जा सकती है। वीन्स ने कहा फिलोजेनेटिक या जाति-इतिहास संबंधी विविधता हमें विकासवादी इतिहास के महत्वपूर्ण टुकड़ों को संरक्षित करने का एक बड़ा अवसर प्रदान करती है। आवासों के बीच फ़ाइला का वितरण फ़ाइलोजेनेटिक विविधता के इन पैटर्न को समझाने में मदद करता है।शोधकर्ताओं ने पाया कि प्रजातियों की देखे गए अधिकता के पैटर्न को आवासों के बीच विविधीकरण दरों में अंतर के द्वारा सबसे अच्छी तरह से समझाया गया है। जिसमें यह पता चलता है कि एक निश्चित समय में कितनी प्रजातियां उत्पन्न होती हैं और जमा होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ये वे आवास है जहां प्रजातियां अधिक तेजी से बढ़ती हैं, उनमें अधिक जैव विविधता होती है। विविधीकरण दर कई अलग-अलग कारणों पर निर्भर हो सकती है। लेकिन वेन्स के मुताबिक आवासों के बीच विविधीकरण दरों में अंतर को समझाने के लिए भौगोलिक बाधाएं सबसे अहम हो सकती हैं। उन्होंने कहा प्रजातियां समुद्र या ताजे पानी की तुलना में भूमि पर अधिक तेजी से फैल सकती हैं क्योंकि समुद्र की तुलना में भूमि पर फैलाव के लिए कई बाधाएं हैं, जहां जीव अधिक स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ सकते हैं। ये बाधाएं पौधों और जानवरों दोनों में सभी आवासों में नई प्रजातियों की उत्पत्ति और उन्हें आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। वीन्स ने कहा कि हम यह दिखाने में सफल रहे कि महासागरों को पहले उपनिवेशित किया गया था, फिर प्रजातियां मीठे पानी के आवासों में चली गईं और अंत में, भूमि पर चली गईं। यह पौधों और जानवरों के लिए एकदम सही है। इसलिए भूमि की अधिक जैव विविधता को स्थलीय आवासों के पहले उपनिवेशीकरण द्वारा समझाया नहीं जा सकता है। जैविक उत्पादकता का मतलब पौधों की वृद्धि जिसे परंपरागत रूप से वैश्विक जैव विविधता पैटर्न के प्रमुख चालकों में से एक माना जाता है, जो पहले की तुलना में बहुत कम प्रभाव डालता है। वीन्स ने कहा पूरी उत्पादकता समुद्र और भूमि के बीच समान है, जो हमें बताती है कि वैश्विक स्तर पर, उत्पादकता जैव विविधता का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक नहीं है। इसी तरह, क्षेत्र एक निर्णायक करण प्रतीत नहीं होता है, या तो, क्योंकि महासागरों में सबसे बड़ा क्षेत्र है लेकिन प्रजातियों की संख्या बहुत सीमित है। यह अध्ययन इकोलॉजी लेटर्स जर्नल में प्रकाशित हुआ है।

साभार - डाउन टू अर्थ

विलुप्ति के कगार पर पहुंची 21 फीसदी से अधिक सरीसृप प्रजातियां

नई दिल्ली। दुनिया भर में अन्य प्राणियों के खतरों को अच्छी तरह से दर्ज किया गया है जिसमें 40 फीसदी से अधिक उभयचर, 25 प्रतिशत स्तनधारी और 13 प्रतिशत पक्षी विलुप्त होने के कगार पर हैं। लेकिन अब तक शोधकर्ताओं के पास सरीसृपों के खतरे में होने के अनुपात की व्यापक तस्वीर नहीं थी।

अब शोधकर्ताओं ने दुनिया के ठंडे खून वाले जीवों का पहला बड़ा वैश्विक आकलन किया। जिसके मुताबिक हर पांच में से कम से कम एक सरीसृप प्रजाति के विलुप्त होने का खतरा है। इन प्रजातियों में आधे से अधिक में कछुए और मगरमच्छ शामिल हैं। दुनिया भर में जैव विविधता में विनाशकारी गिरावट देखी जा रही है, इसके चलते तेजी से पृथ्वी पर जीवन को खतरे के रूप में देखा जा रहा है। कई कारणों में से एक जलवायु परिवर्तन भी इस खतरे के लिए जिम्मेवार है। एक नए वैश्विक मूल्यांकन के आधार पर शोधकर्ताओं ने 10,196 सरीसृप प्रजातियों का आकलन किया। इनका इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) के खतरे वाली प्रजातियों की रेड लिस्ट के मानदंडों का उपयोग करके उनका मूल्यांकन किया। उन्होंने पाया कि कम से कम 1,829 या 21 प्रतिशत या तो असुरक्षित, संकटग्रस्त या गंभीर रूप से संकटग्रस्त पाए गए। आईयूसीएन-संरक्षण अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता आकलन इकाई का प्रबंधन करने वाले और सह-अध्ययनकर्ता का नेतृत्व करने वाले नील कॉक्स ने कहा यह उन प्रजातियों की संख्या से अधिक है जिन्हें हम खतरे के रूप में देखते हैं। उन्होंने बताया कि अब हम प्रत्येक सरीसृप प्रजातियों के सामने आने वाले खतरों को जानते हैं, वैश्विक समुदाय अगला इनके संरक्षण के लिए कदम उठा सकता है। मगरमच्छ लगभग 58 प्रतिशत और कछुए लगभग 50 प्रतिशत सबसे अधिक खतरे वाली प्रजातियों में पाए गए। कॉक्स ने कहा कि यह अक्सर ÷अति-शोषण और उत्पीड़न÷ की वजह से ये खतरे में पड़ गए हैं। उन्होंने कहा कि मगरमच्छों को उनके मांस के लिए और उन्हें मानव बस्तियों से निकालने के लिए मार दिया जाता है, जबकि कछुओं को पालतू व्यापार द्वारा निशाना बनाया जाता है और पारंपरिक चिकित्सा के लिए उपयोग किया जाता है। खतरे में एक और प्रसिद्ध प्रजाति भयानक किंग कोबरा है, जो दुनिया का सबसे बड़ा जहरीला सांप है। यह भारत से दक्षिण पूर्व एशिया के विशाल क्षेत्र में जंगलों में अन्य सांपों की तुलना में लगभग पांच मीटर लंबा हो सकता है। कॉक्स ने कहा इसे कमजोर के रूप में वर्गीकृत किया गया है, यह दर्शाता है कि यह विलुप्त होने के बहुत करीब है। यह एशिया में एक वास्तविक प्रतिष्ठित प्रजाति है और इस तरह की व्यापक प्रजातियां वास्तव में पीड़ित हैं और लगातार घट रही हैं। उन्होंने कहा, मनुष्यों द्वारा जानबूझकर सांपों पर हमले के सबसे बड़े खतरों में से एक थे। नेचरसर्व के मुख्य प्राणी विज्ञानी और सह-अध्ययनकर्ता ब्रूस यंग ने कहा कि खतरे वाले सरीसृप बड़े पैमाने पर दक्षिण पूर्व एशिया, पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी मेडागास्कर, उत्तरी एंडीज और कैरिबियन में पाए गए थे। शोधकर्ताओं ने बताया कि सरीसृपों को रेगिस्तान, घास के मैदानों और सवाना जैसे शुष्क आवासों तक सीमित पाया, जो वन में निवास करने की तुलना में काफी कम खतरे में हैं । कृषि, लकड़ी काटने, आक्रामक प्रजातियां और शहरी विकास सरीसृपों के लिए खतरों में से पाए गए, जबकि लोग उन्हें पालतू व्यापार के लिए भी निशाना बनाते हैं या भोजन के लिए या डर से उन्हें मार देते हैं। जलवायु परिवर्तन लगभग 10 प्रतिशत सरीसृप प्रजातियों के लिए एक सीधा खतरा पैदा करने के रूप में पाया गया था। हालांकि शोधकर्ताओं ने कहा कि इसकी संभावना कम थी क्योंकि यह समुद्र के स्तर में वृद्धि, या चीजों से अप्रत्यक्ष जलवायु में बदलाव से होने वाले वाले खतरों, रोगों पर ध्यान में नहीं दिया जाता है। शोधकर्ताओं को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि स्तनधारियों, पक्षियों और उभयचरों के संरक्षण के उद्देश्य से सरीसृपों को भी कुछ हद तक लाभ हुआ है, हालांकि उन्होंने जोर देकर कहा कि अध्ययन कुछ प्रजातियों के लिए विशिष्ट तत्काल संरक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। यंग ने कहा कि सरीसृपों का मूल्यांकन, जिसमें दुनिया भर के सैकड़ों वैज्ञानिक शामिल थे, उन्होंने बताया कि धन की कमी के कारण इसे पूरा होने में लगभग 15 साल लग गए।

उन्होंने कहा कि सरीसृप, कई लोगों के लिए, करिश्माई नहीं हैं। संरक्षण के लिए कशेरुकियों की कुछ अधिक प्यारे या पंख वाली प्रजातियों पर अभी बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। शोधकर्ताओं को उम्मीद है कि नए मूल्यांकन से जैव विविधता के नुकसान को रोकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाई में मदद मिलेगी।

लगभग 200 देश वर्तमान में प्रकृति की रक्षा करने की कोशिश करने के लिए वैश्विक जैव विविधता वार्ता में शामिल हैं, जिसमें 2030 तक पृथ्वी की 30 प्रतिशत सतह के महत्वपूर्ण जीव भी शामिल हैं। यंग ने कहा कि इस तरह के काम के माध्यम से, हम इन प्राणियों के महत्व के बारे में जानकारी देते हैं। वे जीवन का हिस्सा हैं, किसी भी अन्य की तरह और समान रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

टाइटन पर भी हो सकती है जीवन की सम्भावना, काफी कुछ पृथ्वी से मिलती है इसकी संरचना

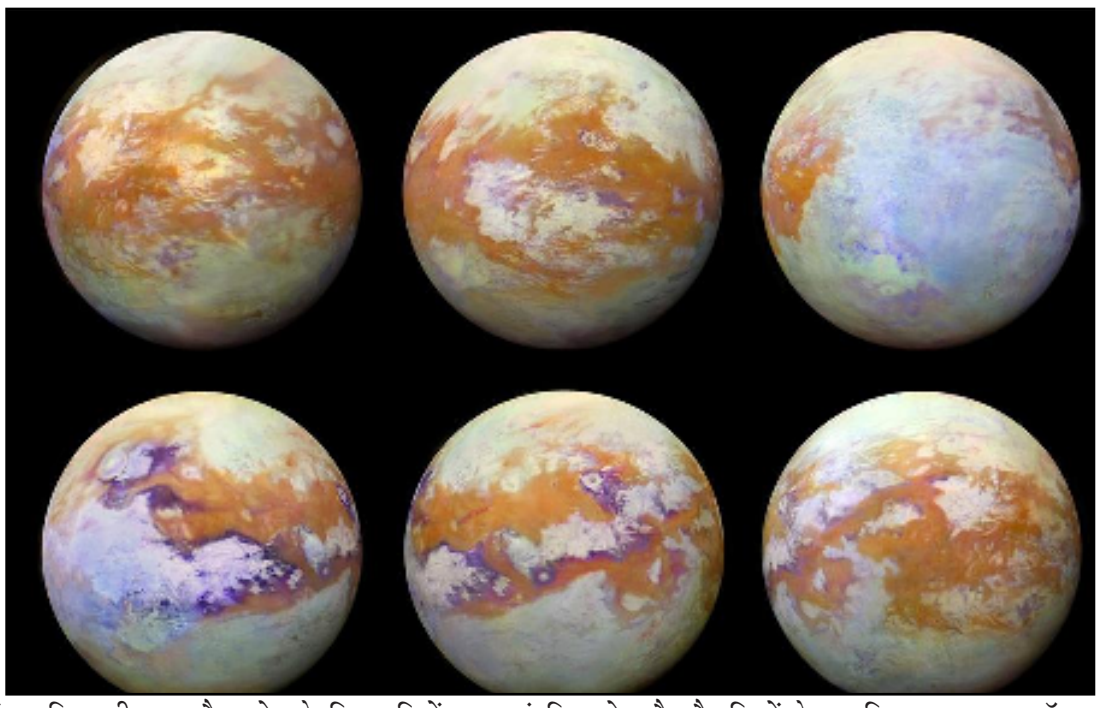

मुंबई।

दशकों से वैज्ञानिक इस बात की जांच करने में लगे हैं कि क्या हमारी पृथ्वी के अलावा भी ऐसा कोई ग्रह है, जहां जीवन की सम्भावना हो सकती है। भले ही यह बात आपको काल्पनिक या परियों की कहानी जैसी लगे पर हाल ही में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने जानकारी दी है कि हमारे सौरमंडल के एक ग्रह शनि (सैटर्न) का चन्द्रमा 'टाइटन' बहुत हद तक हमारी धरती जैसा ही है। इसे समझने के लिए वैज्ञानिकों ने टाइटन के भूदृश्य निर्माण का एक मॉडल तैयार किया है, जिसमें पृथ्वी जैसी ही परग्रही दुनिया का पता चला है। वैज्ञानिकों के अनुसार शनि का यह चंद्रमा 'टाइटन' अंतरिक्ष से देखने पर काफी हद तक पृथ्वी जैसा ही दिखता है, जहां नदियां, झीले, कैनियन, रेत के टीले और समुद्र हैं, जो बारिश के पानी से भरे हैं। इन सबको भी मौसम संचालित करता है। अनुमान है कि टाइटन पर भी एक घना वातावरण मौजूद है जो बारिश और मौसम जैसी घटनाओं को नियंत्रित करता है।

गौरतलब है कि टाइटन शनि ग्रह का सबसे बड़ा चंद्रमा है और सौरमंडल का दूसरा सबसे बड़ा प्राकृतिक उपग्रह है। हमारे सौरमंडल का यह एकमात्र ऐसा चन्द्रमा है जो अपने घने वातावरण के लिए जाना जाता है। इतना ही नहीं यह पृथ्वी के अलावा अंतरिक्ष में एकमात्र ऐसा ज्ञात ऑब्जेक्ट है जिस की सतह पर स्थिर रूप में मौजूद तरल के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं।

हालांकि देखने में ये परिदृश्य (नदियां, झीले, कैनियन, रेत के टीले और समुद्र) बहुत हद तक हमारी धरती जैसे ही लगते हैं, लेकिन वो ऐसे मैटेरियल से बने हैं जो निस्संदेह हमारी धरती से अलग हैं। इसकी बर्फीली सतह पर तरल रूप में मीथेन की नदियां बहती हैं और नाइट्रोजन युक्त हवाएं हाइड्रोकार्बन से बने रेत के टीलों का निर्माण करती हैं। देखा जाए तो हमारी धरती की तुलना में टाइटन पर इस मैटेरियल की उपस्थिति, जिनके यांत्रिक गुण हमारे सौर मंडल में ज्ञात अन्य तलछट पिंडों को बनाने वाले सिलिकेट-आधारित पदार्थों से काफी भिन्न हैं, टाइटन के परिदृश्य निर्माण को कहीं ज्यादा गूढ़ बनाते हैं। ऐसे में टाइटन पर मौजूद यह हाइड्रोकार्बन-आधारित पदार्थ कैसे रेत में बदलते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहां कितनी बार हवाएं चलती हैं जबकि जमीन पर मौजूद रेत के लिए नदियों का प्रवाह जिम्मेवार है। इस बारे में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के भूविज्ञानी मैथ्यू लपोत्रे और उनके सहयोगियों ने मॉडल की मदद से स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कैसे टाइटन पर टीले, मैदान और अनजाने इलाकों का निर्माण हुआ है।लम्बे समय से वैज्ञानिक टाइटन के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने का प्रयास कर रहे हैं क्योंकि यह पृथ्वी के बाद हमारे सौरमंडल का एकमात्र ऐसा ऑब्जेक्ट है जहां पृथ्वी की तरह ही मौसम और तरल का मौसमी प्रवाह होता है। वैज्ञानिकों द्वारा जर्नल जियोफिजिकल रिसर्च लेटर्स में प्रकाशित इस नए मॉडल से पता चला है कि कैसे टाइटन की सतह पर ऋतु चक्र, रेत के कणों की गति को बढ़ाते हैं। वैज्ञानिकों के मुताबिक टाइटन पर मौजूद ठोस कण या तलछट, नरम हाइड्रोकार्बन के कणों से बने हैं, जिनके धूल में बदलने की सम्भावना कहीं ज्यादा है। फिर भी, टाइटन के भूमध्यरेखीय टीले कई सैकड़ों या हजारों वर्षों से सक्रिय हैं, जो स्पष्ट करता है कि इन अक्षांशों पर कोई न कोई ऐसा तंत्र जरूर है जो इन रेत के आकार के कणों का लगातार निर्माण कर रहा है। वैज्ञानिकों ने उस परिकल्पना का अनुमान लगाया है, जिसके अनुसार जब यह कण हवा या मीथेन की नदी के जरिए प्रवाहित होते हैं और उनका जमाव होता है तो वो घर्षण की वजह से रेत कणों में बदल सकते हैं, जिनका आकर संतुलित होता है। वैज्ञानिकों के मुताबिक उनका यह मॉडल इस बात की व्याख्या कर सकता है कि कैसे तलछट का मौसमी प्रवाह टाइटन पर रेत का निर्माण कर सकता है। साथ ही इसकी मदद से टाइटन पर भूदृश्यों के वितरण को भी समझा जा सकता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि कुल मिलकर उनके निष्कर्ष टाइटन पर वैश्विक तलछट मार्गों की परिकल्पना का समर्थन करते हैं, जो मौसम द्वारा संचालित होते हैं। इसके साथ ही इनके निर्माण में नदियों और हवाओं द्वारा लाए जा रहे कार्बनिक रेत कणों के जमाव और घर्षण की भी बड़ी भूमिका है। इस बारे में स्टैनफोर्ड स्कूल ऑफ अर्थ, एनर्जी एंड एनवायरनमेंटल साइंसेज में भूवैज्ञानिक और शोध से जुड़े शोधकर्ता मैथ्यू जी ए लपोत्रे का कहना है कि ÷हमारा मॉडल एक एकीकृत ढांचा तैयार करता है जो यह समझने में मदद कर सकता है कि तलछट से जुड़े यह सभी वातावरण कैसे एक साथ काम करते हैं। ÷उनके अनुसार ऐसे में यदि हम इस पहेली के सभी हिस्सों को सुलझा लेते हैं तो हम इन तलछट प्रक्रियाओं द्वारा पीछे छोड़ी भू-आकृतियों की मदद से टाइटन की जलवायु या भूवैज्ञानिक इतिहास के बारे में बहुत कुछ समझ सकते हैं। साथ ही यह संरचनाएं कैसे टाइटन पर जीवन की संभावनाओं को कैसे प्रभावित कर सकती हैं इस बारे में जान सकते हैं।

तीव्र उष्णकटिबंधीय चक्रवातों का खतरा होगा दोगुने से अधिक

नई दिल्ली। एक नए अध्ययन के अनुसार मानवजनित जलवायु परिवर्तन से सदी के मध्य तक तेज उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की संख्या दोगुनी हो जाएगी। इन चक्रवातों के चलते दुनिया भर के बड़े हिस्से खतरे में पड़ जाएंगे। विश्लेषण में यह भी अनुमान लगाया गया है कि इन चक्रवातों से जुड़ी अधिकतम हवा की गति लगभग 20 फीसदी तक बढ़ सकती है।

दुनिया की सबसे विनाशकारी चरम मौसम की घटनाओं में से एक होने के बावजूद, उष्णकटिबंधीय चक्रवात अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं। किसी दिए गए वर्ष में, विश्व स्तर पर केवल लगभग 80 से 100 उष्णकटिबंधीय चक्रवात बनते हैं, जिनमें से अधिकांश कभी भी टकराते नहीं हैं। इसके अलावा, इनके सटीक वैश्विक ऐतिहासिक रिकॉर्ड नहीं हैं, जिससे यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि वे कहां घटित होंगे और इससे निपटने के लिए सरकारों को किस तरह की कार्रवाई करनी चाहिए। इस सीमा का पता लगाने के लिए, साउथेम्प्टन विश्वविद्यालय से इवान हाई को शामिल करने वाले वैज्ञानिकों के एक अंतरराष्ट्रीय समूह ने एक नया दृष्टिकोण विकसित किया। जिन्होंने वैश्विक जलवायु मॉडल के साथ ऐतिहासिक आंकड़ों को मिलाकर सैकड़ों हजारों कृत्रिम उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पन्न किए। इस अध्ययन की अगुवाई, वाले ब्रीजे यूनिवर्सिटी एम्स्टर्डम के इंस्टीट्यूट फॉर एनवायर्नमेंटल स्टडीज के डॉ. नादिया ब्लोमेन्डल ने किया है। डॉ. ब्लोमेन्डल ने कहा कि हमारे परिणामों से पता चलता है की हम उष्णकटिबंधीय चक्रवात के खतरों में सबसे अधिक वृद्धि होने की आशंका वाले स्थानों की पहचान करने में मदद कर सकते हैं। स्थानीय सरकारें तब अपने क्षेत्र में खतरों को कम करने के उपाय कर सकती हैं, ताकि जान-माल के नुकसान को कम किया जा सके उन्होंने कहा हमारे सार्वजनिक रूप से उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर, अब हम प्रत्येक तटीय शहर या क्षेत्र के लिए उष्णकटिबंधीय चक्रवात के खतरों का अधिक सटीक विश्लेषण कर सकते हैं। शोधकर्ताओं ने कंप्यूटर से बनाए गए इन चक्रवातों के साथ एक बहुत बड़ा डेटासेट बनाया, जिसमें प्राकृतिक चक्रवातों के समान विशेषताएं हैं। अब शोधकर्ता इनके आधार पर जलवायु परिवर्तन के कारण अगले दशकों में दुनिया भर में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की घटना और व्यवहार को और अधिक सटीक रूप दिखने में सक्षम हैं। यहां तक कि उन क्षेत्रों में भी जहां उष्णकटिबंधीय चक्रवात शायद ही कभी आते हैं। टीम ने विश्लेषण में पाया गया कि सबसे तीव्र चक्रवातों की आवृत्ति, श्रेणी 3 या जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व स्तर पर दोगुनी हो जाएगी। जबकि कमजोर उष्णकटिबंधीय चक्रवात और उष्णकटिबंधीय तूफान दुनिया के अधिकांश क्षेत्रों में आम हो जाएंगे। इसका उलट बंगाल की खाड़ी होगी, जहां शोधकर्ताओं ने तीव्र चक्रवातों की आवृत्ति में कमी पाई।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008